यज्ञ

1. **दीक्षा–** इसे सोम यज्ञ से पहले यज्ञमान तथा उसकी पत्नी सम्पन्न करते है। इसका सम्पादन
2. यज्ञशाला में अग्नि के समीप किया जाता है। हिल्के व्रान्डर के अनुसार वैदिक शिक्षा अग्नि में इच्छापूर्वक मरण था जिससे विष्णु के परम पद की प्राप्ति हो जाय।
3. **अवभृय या अंतिम स्थान** :– यह सोम यज्ञ तथा अन्य कई यज्ञो में उप संहार स्वरूप होता था। यज्ञ समाप्त होने पर विसर्जन योग बहुत सी सामाग्री को जल नीचे ले जाना हैं।
4. **निषेध** :– यज्ञ के अनेक प्रसंगो में यज्ञमान के लिए आदेश किया गया है कि वह अमूक काल तक सम्भोग न करे निराधर रहे अथवा किसी भोजन विशेष पर रहे भूमि पर शयन करे आदि।
5. **स्तुति के रूप** :– देवताओं के कार्यो का वर्णन करने वाले तथा देवताओं की सहायता याचना करने वाले मंत्र पद्यात्मक है दूसरी और यज्ञ के प्रत्येक कार्य के विशेष रूप से आहुति के साथ पढ़ें जाने वाले मंत्र गद्यात्मक हैं। इस प्रकार गद्यात्मक और पद्यात्मक दोनो के ही समिश्रण से यज्ञ सम्पन्न होता था।

यज्ञ का महत्वः– कीथ महोदय ने समाधि के पूर्व की तैयारी से इसकी समता की है वे मानते है कि इसके द्वारा सारे पापों से मुक्ति होती है इसका सम्बन्ध आध्यात्मिक उन्नति से जोड़ा गया है। दूसरी ओर इसे सादृष्य मूलक जादू से भी जोड़ा गया है। ग्रावा को हाथ में लेकर शत्रु चिंतन करके उसे नष्ट करे। इससे शत्रु नष्ट होता है। ऐसी मान्यता है। कुछ यज्ञो का महत्व नित्य सम्पादन में है यथा अग्नि होत्र यज्ञ तो कुछ को काम में माना जाता है। यथा राज सूय, वाजपेय और अश्वमेघ यज्ञ। पुत्रेष्टि यज्ञ पुत्र प्राप्ति हेतु सम्पन्न किया जाता हैं करिराष्टि यज्ञ वर्षा हेतु सम्पन्न किया जाता था। नरेन्द्रनाथ साथ भट्टाचार्य ने यज्ञो की समाजिक दृष्टिकोण से व्याख्या की हैं। वे अश्वमेघ को यज्ञ के साथ सम्भोग रूपी तादात्म जोड़ते है। वाजपेय को वे उत्पादन पद्धति से जोड़ते है। योगी राजवसु ने भी अश्वमेघ के संदर्भ में ऐसी मान्यता दी हैं।

उपनिषदः– उपनिषदों में एक या दो नहीं वरन् अनेक परस्पर विरोधी सिद्धान्त है जिनके कारण व्याख्याओं में विषमतायें आयी है। कुछ तो विचारों की झलक मात्र है कुछ अल्प विकसित है और कुछ ओर भी प्राचीन युग के अवशेष मात्र है। इसी के कारण उपनिषदो में वर्णित परमतत्व के सम्बन्ध में उपनिषदों में विषमता मिलती है।

उपनिषदों में परमतत्व के लिए दो राज्यों का प्रयोग किया गया है आत्मन और ब्रहमन। इन्हें ऐसा दो स्तम्भ कहा गया है ''जिनके ऊपर भारतीय दर्शन का प्रायः पूरा दर्शन खड़ा है।'' इन शब्दों की उत्पत्ति स्पष्ट नहीं है ब्रृहमन शब्द 'वृह' धातु से निकला है जिसका अर्थ बढ़ना या फूट जाना है सम्भवतः पहले पहल प्रार्थना या प्रार्थना के रूप में ब्रृहमन वह है जो स्वयं को ऋष्य वाणी में व्यक्त करता है। इसी के बाद वह दार्शनिक अर्थ सम्भवतः निकला जो ब्राहमन का उपनिषदों में है अर्थात विश्व का मूल कारण वह जो अनेक वाणी के रूप में नही सम्पूर्ण प्रकृति के रूप में स्वतः फूट पड़ता है। आत्मन का मुल अर्थ स्वास होने था। बाद में इसका प्रयोग किसी भी वस्तु के लिए विशेष रूप से मनुष्य के लिए होने लगा।

ब्रृहमन और आत्मन के उपनिषदों में अलग–अलग शब्द है। ब्रृहमन बाहय जगत का चरम स्त्रोत है तथा आत्मा मनुष्य के अंदर रहने वाला चैतन्य है। यद्यपि इनके मूल अर्थ परस्पर भिन्न थे फिर भी कभी–कभी अमूक अर्थो में इनका प्रयोग उपनिषदों में मिलता है उन मूल अर्थो में ऐसा प्रयोग पर्यायों के रूप में होने लगा था। मनुष्य सहित सम्पूर्ण ब्रहमांड शाश्वत स्त्रोत है। ऐसा करते हुए कालान्तर में दोनों शब्दों के अर्थ एक हो गये। इस प्रकार कि चरकों ने वाहय तत्व की आन्तारिक तत्व से एकात्मकता स्थापित की और अपनी प्राचीन दार्शनिक परम्परा को प्रगट किया था। जिसका लक्ष्य देव कल्पना से कहीं आगे था।

कालक्रम में आत्मन का अर्थ मनुष्य के अंदर का चैतन्य हो गया था। उत्तर कालीन संहिताओ तथा ब्राहमण ग्रंथो के समय से भारतीयो की व्यक्ति और जगत के बीच एकता ढूढ़ने तथा एक के प्रत्येक महत्वपूर्ण लक्षण की तरह दूसरे का कोई महत्वपूर्ण लक्षण जानने की आदत बन गयी थी। इसके पीछे जगत को व्याक्ति के माध्यम से समझने का प्रयास था। ज्ञात विशेष से सामान्य अज्ञात में पहुॅचने का इस प्रकार का प्रयास पुरूष सुक्त में दिखाई देता है। जिसमें जगत के भागो को पुरुष का भाग बताया गया है। सम्पूर्ण जगत को एक विराट पुरुष के रूप में देखने की प्रवृति का स्वभावता आत्मा की धारणा पर प्रभाव पड़ा। इससे एक आंतरिक तत्व एक विश्व तत्व के रूप में परिणत हो गया। आत्मा जो मनुष्य में वास करने वाला सत्य है जगत में वास करने वाला सत्य बन गया। इसके फलस्वरूप विश्व आत्मा ही एक मात्र आत्मा रह गया तथा जीव के अंतर्गत रहने वाली आत्मा किसी रूप में उससे अभिन्न मान ली गयी।

औपचारिक एक अन्य विचार धारा में जगत के मूल स्रोत को ब्रहम माना गया। विश्व के इस मूल स्रोत ब्रहम का चिन्तन के विकास क्रम में व्यक्ति के अंदर की सार वस्तु आत्मा से मतभेद कर दिया गया। इस प्रकार विचार की दो स्वतन्त्र धारायें जिनमें

से एक मनुष्य के सच्चे स्वरूप को समझने की इच्छा का फल थी और उस एकता को खोज लिया गया जिसकी जिज्ञासा दीर्घ काल से बनी हुई थी यह भौतिक जगत जो कि आत्मा के सिद्धान्त अनात्म या जड़ मात्र है व आत्मा में परिणत हो गया। इस प्रकार दो बाहय रूप में भिन्न किन्तु आन्तरिक रूप में समान धाराओं का एक में मिल जाना उपनिषदों की शिक्षा की मुख्य विशेषता है। जो तत्वमसि अहं ब्रहमास्मि तथा ब्रहम आत्मा समीकरण में व्यक्त होती है। व्यक्ति और जगत दोनों ही एक ही तत्व की अभिव्यक्तियॉ है। इसी लिए दोनो मूलतः एक है। दूसरे शब्दों में प्रकृति और मानव के बीच अथवा इन दोनों और ईश्वर के बीच कोई व्यवधान नहीं है।

प्रोफेसर रानाडे के अनुसार उपनिषदों में वर्णित आत्मा के आध्यात्मिक विकास की सीटो में पॉच स्थितिया मानी जा सकती है।

1. आत्मा या अरे दृष्टव्यः– ब्रहदारण्यक उपनिषद में बताया गया है कि व्यक्ति स्वंय को आत्मा से पृथक समझते हुए अपने अंदर आत्मा के रहस्यात्म दर्शन द्वारा उसकी अनुभूति करता है।
2. आत्मानम् विजानी याद यमं स्मृति पुरुष :– ब्रहरारण्यक उपनिषद में दूसरी अवस्था में यह कह कर समझाया गया है कि हम यह अनुभव करे कि हम आत्मा ही है और हमारा शरीर एन्द्रिक, भौस्हेदक अथवा भावात्मक पोष नहीं है। इस अवस्था में शुद्ध आत्मा से तादात्म का अनुभव होता है।
3. वृहदारण्यक उपनिषद में ''अपमात्मा ब्रहम' आया है जिसके अनुसार आध्यात्मिक अनुभव की तीसरी अवस्थाओं में यह अनुभुति होनी चाहिए कि जिस आत्मा को हमने अनुभव किया है वह ब्रहम से एकाकर है इसी बात को समझया भी गया है "पूर्ण मिदः पूर्णामिदमः पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय मेवान शिष्यते।" अर्थात् आत्मा पूर्ण है और बृहम भी पूर्ण है, ब्रहम की पूर्णता से आत्मा की पूर्णता निकलने पर जो कुछ बचता है वह भी पूर्ण है इस प्रकार यह स्पष्ट करने की कोशिश की गयी है कि आत्मा और ब्रहम में कोई भी भेद नहीं है।
4. अहं ब्रहमास्मिः– बृहदाराण्यक उपनिषद में आया है इसकी समता छान्दोण्योपनिषद के तत्वमा से की जा रही है। ये दोनों ही एक ही बात को दो शब्दों में कहना मात्र है। यह आध्यात्मिक अनुभूति है जो पहली तीन अवस्थाओं के परिणाम स्वरूप प्राप्त होती है। जब जीव का यर्थाथ रूप आत्मा है और ब्रहम है तो इसका यही अर्थ है कि मैं ब्रहमा हूॅ।
5. छान्दोग्य उपनिषद में 'सर्व खलुइदं ब्रहम' का प्रयोग मिलता है। मानस और प्रकृति आत्मा और अनात्मा सभी ब्रहम है यह पूर्ण अद्वैव की अवस्था है इस अवस्था को प्राप्त होने पर पूर्ण आत्मा लाभ हो जाता है।

————————————————————